सभी सम्बन्धों में से ईश्वरीय सम्बन्ध का महत्त्व

जब हम इस सृष्टि रूपी रचना पर गहराई से विचार करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि इसमें सम्बन्ध अन्यन्त महत्त्वशाली हैं। जब आत्मा इस संसार में आ कर शरीर लेती है, तब से ही उसके सम्बन्ध शुरू हो जाते हैं। बल्कि, शायद यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह जहाँ आकर शरीर लती है, वहीं उसका साकार होना भी उसके पूर्व-निश्चित सम्बन्ध ही के आधार पर होता है। उसका उन्हीं माँ-बाप से सम्बन्ध होना होता है, तभी तो वह वहाँ जन्म लेती है। फिर धीरे-धीरे उस शिशु अथवा बालक को अधिकाधिक सम्बन्धों का परिचय अथवा भान होता है और उन-उन सम्बन्धों के अनुसार ही परस्पर व्यवहार, शिष्टाचार अथवा कर्त्तव्य शुरू होता है। इन्हीं सम्बन्धों को मर्यादित करने के लिए ही हम व्यवहार-संहिता बनाते हैं या नैतिकता-अनैतिकता अथवा आचार एवं चरित्र की चर्चा करते हैं। यदि माता-पिता, बहन-भाई, पति-पत्नी और अड़ोसी-पड़ोसी में अथवा व्यक्ति और समाज में सम्बन्ध राग और द्वेष से रहित होते हैं तो हम उस प्रवृत्ति को 'पवित्र प्रवृत्ति' कहते हैं और उस नर-नरी के कर्मों को 'श्रेष्ठ कर्मों' की संज्ञा देते हैं और यदि उन संम्बन्धों में विकृति आती है अथवा मर्यादा का अतिक्रमध होता है तो हम उसे 'विकर्म' कहते हैं। अत: पाप और पुण्य भी सम्बन्ध ही को ठीक निभाने या गलत विधि निभाने के साथ जुटे हुए हैं। कर्त्तव्य (Duty) और अकर्त्तव्य (Non-Duty), धर्म और अधर्म, विधि और निषेध (Do's and Don'ts) सभी सम्बन्ध ही से तो जुड़े हुए हैं। सम्बन्ध के बिना तो मनुष्य के विचार ही नहीं चल सकते। दिन-भर में आप जितने मनुष्यों के बारे में सोचते हैं, उनसे आपका पिता, भाई, चाचा, सखा, सहाकरी, पड़ोसी आदि का कोई-सा सम्बन्ध जरूर है, वरना आपके स्मृति पटल पर अथवा आपके विचार-दर्पण में वे आ ही नहीं सकते। अत: सम्बन्ध ही मनुष्य के आचार और विचार की धुरी हैं।

सभी ज्ञान और विज्ञान भी सम्बन्धों ही की चर्चा करते हैं

देखा जाय तो सभी ज्ञान-विज्ञान भी सम्बधों ही का बोध कराते हैं। समाज शास्त्र (Civics) नागरिकों के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करता है और उसके आधार पर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की चर्चा करता है। अर्थशास्त्र (Econonics) मनुष्य के आर्थिक सम्बन्ध की और 'राजनीति विज्ञान' राजनैतिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है। विधि शास्त्र (Law) इन सम्बन्धों ही को ठीक बनाये रखने या इन में बिगाड़ पैदा होने (अपराध होने) पर इन्हें न्यायपूर्ण निपटाने के लिए नियम निर्धारित करता है। इसी प्रकार भूगोल (Geography) और पर्यावरण विज्ञान (Ecology) हमारे भौगोलिक सम्बन्धों तथा पर्यावरण के साथ हमारे सम्बन्ध को निश्चित करते हैं। ऐसी ही बात अन्य विज्ञानों के बारे में भी कही जा सकती है। इसे स्पष्ट है कि संसार में सम्बन्ध का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

ईश्वरीय ज्ञान आदि की आवश्यकता मानवीय सम्बन्ध ठीक करने के लिए

आज जो लोग यह पूछते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान, योग, दिव्य गुणों की धारणा आदि की क्या अवश्यकता है, उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि ईश्वरीय ज्ञान हमारे उन पारस्परिक मानवी एवं आत्मिक सम्बन्धों का सही बोध कराके हमें बतलाता है कि हमारे सम्बन्ध कैसे होना चाहिएँ।

इन सम्बन्धों के बिगड़ने का सबसे पहला रूप, शरीर और आत्मा के बीच रथ और रथी, कार और ड्राईवर, मकान और मालिक के सम्बन्ध को न जानकर इनका एकीकरण अथवा तादात्म्य (Identification) अर्थात इनको एक मान लेना है। इससे ही देहाभिमान रूपी मनोविकार उत्पन्न होता हे और उससे अन्य सारे विकार जन्म लेते हैं और इसी को ठीक करने के लिए ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग की आवश्यकता है।

गुणों की धारण भी सम्बन्धों के लिये

पुनश्च, सम्बन्धों ही में श्रेष्ठता लाने के लिए दिव्य गुणों की चर्चा भी होती है-दिव्य गुण ही ईश्वरीय ज्ञान का एक अन्य विषय हैं। हम संसार में देखते हैं कि हरेक व्यक्ति उस ही मनुष्य से सम्बन्ध रखना चाहता है जिसमें नम्रता, मधुरता, स्नेह, सहयोग की भावना, धीरज, सन्तोष आदि हों। जहाँ सन्तोष की बजाय लोभ, सहनशीलता की बजाय क्रोध, मधुरता के स्थान पर कटुता, सहयोग की बजाय विरोध अथवा द्वेष हों, वहाँ सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं। जो मनुष्य सभी सम्बन्धों में ठीक बरतता हो, उसे ही 'गुणवान', 'मर्यादा पुरुषोत्तम' अथवा 'अहिंसक' कहा जाता है और जो मनुष्य सम्बन्धों में पवित्र स्नेह की जगह पर ईर्ष्या, स्वार्थपरता, निर्दयता, द्वन्द्व आदि पैदा करता है उसे ही गुणहीन माना जाता है। और, हम रोज देखते हैं कि गुणवान को ही 'महान' माना जाता है, गुणवान की ही महिमा होती है। इसे ही आप समझ सकते हैं कि सम्बन्धों में गुण लाना और उसके लिए ईश्वरीय शिक्षा को लेना कितना महत्वपूर्ण है। दिव्य गुणों के बिना सम्बन्ध अखड़ते हैं, दु:ख दायक महसूस होते हैं और इन सम्बन्धों के बिना दिव्य गुणों की चर्चा ही अर्थहीन है।

सेवा का आधार भी सम्बन्ध ही है

इसी प्रकार मानव मानव में एक स्नेह का सम्बन्ध मानकर, भातृत्व को जानकर, दूसरों के प्रति शुभ भावना, उत्सर्ग, त्याग तथा मन-वचन-कर्म से उनकी उन्नति और शान्ति के लिए प्रयत्न ही का नाम सेवा है। जो इस भातृत्व के सम्बन्ध को नहीं समझता अथवा इस सम्बन्ध के कारण अपने कर्त्तव्य को नहीं समझता, वह सेवा भी नहीं कर सकता।

'योग' शब्द का तो अर्थ ही 'सम्बन्ध जोड़ना' है

इस प्रकार 'योग' आत्मा के एक अत्यावश्यक सम्बन्ध को ही फिर से जोड़ना है। आत्मा का परमपिता परमात्मा से जो सम्बन्ध है, वह टूट जाने के परिणामस्वरूप ही तो अन्य सम्बन्धों में विकृति आई है और मनुष्य आध्यात्मिक शक्ति से विहीन हुआ है। अत: मनुष्य को यह बोध करा कर कि वह शरीर नहीं बल्कि एक आत्मा है और आत्मा के नाते से असके माता-पिता के रूप में उसका सम्बन्ध परमात्मा से है, उसके इस सम्बन्ध को फिर से जोड़ने का 'योग' रूप पुरुषार्थ कराया जाता है ताकि उसके जीवन में शान्ति और आनन्द का ईश्वरीय-पैत्रिक अधिकार उसे प्राप्त हो।

इस सब कथनोपकथन का तात्पर्य यह है कि अब आत्मा इस सृष्टि-मंच पर है तब उसे सम्बन्धों में तो रहना ही होगा। किसी एक भी सम्बन्ध के बिना रहना तो असम्भव ही है। कम-से-कम देह और आत्मा के सम्बन्ध को तो मृत्यु से पहले छोड़ा ही नहीं जा सकता। अत: जब इन सम्बन्धों को निभाना ही है, तब मनुष्य को यह ज्ञान होना ही चाहिए कि इन सम्बन्धों को अलैकिक रीति से कैसे निभाया जाय।

सम्बन्धों में श्रेष्ठता लाने की मूल नीति

परमपिता परमात्मा ने इन सम्बन्धों को ठीक करने के बारे में यह कहा है कि "न किसी को दु:ख दो, न किसी से दु:ख लो।" यह हमारे कर्म-विधान की मूल नीति होनी चाहिए। इस नीति से किसी का भी विरोध नहीं हो सकता। परन्तु इस विषय में कठिनाई यह है कि प्राय: मनुष्यों को यह मालूम नहीं है कि इस नीति पर आचरण करने का अर्थ है-जीवन को निर्विकार बनाना क्योंकि काम, क्रोधादि विकार ही दु:ख के उत्पादक हैं। अत: जब जीवन को निर्विकार बनाने की बात सामने आती है तो कुछ लोग तो सम्बन्धों से इन विकारों को निकालने के बारे में ही सहमन नहीं होते। वे कहते हैं कि ये विकार तो स्वाभाविक है; इनके बिना तो काम ही नहीं चलता। एक ओर तो वे यह भी कहते हैं कि संसार में भ्रष्टचार फैला हुआ है, नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है, न्याय नहीं रहा, चारित्रिक पतन हो रहा है आदि-आदि। दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि इन विकारों के बिना तो संसार चल ही नहीं सकता! हालांकि वे देख रहे हैं कि संसार ठीक रीति से चल नहीं रहा, वह लंगड़ा रहा है अथवा जैसे-कैसे घिसट रहा है और इन से ही तनाव और अशान्ति का वातावरण बना हुआ है।

दूसरे कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि विकारों पर विजय प्राप्त करना मुश्किल है। वे कहते हैं कि जीवन निर्विकार बन जाये तो बात बहुत अच्छी है परन्तु हम में वह सामर्थ्य नहीं कि जिससे हम इन दुर्जोय शत्रुओं को जीत सकें।

अब जो प्रथमोक्ति प्रकार के लोग हैं उन्हें यह समझना चाहिए कि सृष्टि तो वास्तव में सम्बन्धों के बिना नही चल सकती जबकि वे गलती से कहते हैं कि विकारों के बिना सृष्टि नहीं चल सकती। गहराई से विचार करने पर वे मानेंगे कि विकार तो उन सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा करते हैं; बिगाड़ के बिना सृष्टि तो चल सकती है परन्तु हाँ, वकलात, कचहरियाँ, जेल खाने, पागल खाने, मिलिट्री आदि के कार्य नहीं चल सकते। हाँ, आज जो संसार में गोला-बारूद के कारखाने, बनावट और मिलावट के धन्धे, लूट-खसूट आदि-आदि सब दिखाई देते हैं, वे नहीं चल सकते क्योंकि सम्बन्धों में पवित्रता और स्नेह आने से दु:ख-दर्द मिट जाते हैं, कलह-कलेश समाप्त हो जाते हैं। इन सम्बन्धों में पवित्रता लाने से संसार के कार्य बन्द नही होते, नरक के द्वार बन्द हो जाते हैं। ज्ञान सम्बन्धों को तोड़ने के लिए नहीं कहता, उनके दिव्यीकरण की विधि समझाता है; उन सम्बन्धों में सद्गुण भरने की राय देता है; उनमें से स्वार्थ निकाल कर सच्चा स्नेह भरने की युक्ति सिखाता है।

फिर जो लोग इन विकारों पर विजय प्राप्त करने की शक्ति के अभाव की बात करते हैं, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि एक सम्बन्ध ऐसा है जिसे जोड़ने से बहुत शक्ति मिलती है। वह सम्बन्ध आत्मा का सर्वशक्तिमान् परमात्मा के साथ है। उस सम्बन्ध को जोड़ने से सभी साँसारिक सम्बन्धों में भी सार आ जाता है और जीवन में शान्ति और आनन्द का रस भर जाता है। पवित्रता, सुख और शान्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार उस परमपिता से सम्बन्ध जोड़ने ही से मिलता है।

भ्रान्ति वालों को भी शान्ति का दान

अब कुछ लोग कहते हैं कि जीवन निर्विकार बनाने का पुरुषार्थ करने पर भी कुछ लोग हमसे दु:खी हेा जाते हैं। वे कहते हैं कि जब हम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहते हैं, मांसाहार और मद्यपान छोड़ने का यत्न करते हैं, सिनेमा में जान बन्द करते हैं तो कुछ लोग हमसे रूष्ट हो जाते हैं। हम तो चाहते हैं कि हम उनकी सेवा करें, उनके कल्याण के लिए निमित्त बनें और अपना भी जीवन पवित्र बनायें, परन्तु किसी-न-किसी भ्रान्ति के कारण वे रुष्ट हो जाते, उत्तेजित हो जाते अथवा मन-मुटाव कर लेते हैं।

इस विषय में हमारा विचार यह है कि हमें अपने मन में टटोलना चहिए कि हम से कोई भूल तो नहीं हुई, हमने उनके प्रति कोई अशुभ विचार तो नहीं किया, हमारे मन में कोई उद्वेग तो उत्पन्न नहीं हुआ। यदि हमारी ओर से ऐसा कुछ नहीं हुआ तो हम उन्हें दु:ख देने के निमित्त नहीं है बल्कि वे ही अपने संकल्पों-विकल्पों की दलदल में स्वयं को ले जाते हैं। हमें उनके प्रति निरन्तर शुभ भावना को बनाये रखना चाहिए और उनके कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। उनके रुष्ट भाव को देखकर हमें निर्विकार बनने और बनाने के पुरुषार्थ को नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि अन्ततोगत्वा यह उनके लिए भी कल्याणाकारी है। हम जानते हैं कि जब किसी के पाँव में काँटा लगा हो तो हम यद्यपि उसे सुई चुभोकर उसका काँटा निकालना चाहते हैं तथापि उस व्यक्ति को तो कुछ कष्ट अनुभव होता है। परन्तु हम तब यह जानकर कि इसमें उसका भला ही है, पुरुषार्थ को नहीं छोड़ते। अन्तर केवल इतना है कि काँटा चुभने की हालत में वह व्यक्ति भी जानता और मानता है कि सुई उसका काँटा निकालने के लिए ही उसे चुभाई जा रही है, परन्तु जिसमें से विकार रूप काँटा निकालने का यत्न हो रहा है, वह कई बार इस बात को नहीं जानता कि यह प्रयत्न उसके कल्याण ही के लिए हो रहा है, अत:वह रुष्ट हो जाता है। हमें कोई-न-कोई रास्ता निकाल कर उसे निर्विकार बनाने का उपाय करते रहना चाहिए।

ooo